हिन्दी साहित्य में कबीर

डॉ. निर्भय सिंह

सारांश- कबीरदास हिन्दी सहित्य के इतिहास में वर्णित भक्तिकाल के 'निर्गुण भक्ति शाखा' के 'ज्ञानाश्रयी काव्य धारा' के अन्तर्गत आते हैं, जिसे 'संत काव्यधारा' के नाम से भी जाना जाता है। पूरे भक्तिकालीन साधकों में कबीरदास का स्थान अन्यतम है। उनके व्यक्तित्व की प्रखरता, चरित्र की निर्मला, स्वभाव की सहजता एवं साधना की उच्चता की सराहना उनके विरोधियों एवं समर्थकों ने समान रूप से की है। कबीर विश्व सन्त है। धरती और इस पर विद्यमान जीवन की खातिर कबीर का जीवन एक लम्बी सत्त प्रार्थना है, कबीर की दृष्टि कई प्रकार से पूर्ण है। मनुष्य को देखते और उसे अपने पूरे होने का अहसास दिलाते हैं। कबीर यों पूरी मनुष्यता के भी और पूरे अस्तित्व के द्रष्टा और प्रतिष्ठापक हैं। मनुष्यों के प्रति उनके इस प्रकार व्यापक दृष्टिकोण रखने के कारण ही उन्हें मानवतावादी कहा जाता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में "कबीर ने मनुष्यत्व की सामान्य भावना को आगे कर निम्न श्रेणी के जनता के मन में आत्मगौरव का भाव जगाया।" कबीरदास जी ने मनुष्यता के विकास की जो भी बातें कहीं उसे उन्हें बहुत ही साहस एवं जीवटता के साथ कहना पड़ा होगा। हम आज एक मानव धर्म और एक मानव संस्कृति की बात करते हैं किन्तु हममें से कितने लोग हे जो कबीर जैसा तेवर रखते हैं। कबीर यह सब लगभग पांच सौ साल पहले कह सके और कह ही नहीं सके अपने आचरण में उसे उतार भी सके थे। उनके पास इतना आत्मविश्वास था कि वे साहस के साथ यह भी कह सके कि उनका रास्ता ही एक मात्र रास्ता है और बाकी के सारे रास्ते गुमराह करने वाले हैं। उनका यह कथन कि जिस चादर को बड़े बड़े सुर, नर और मुनियों ने ओढ़ कर मैला कर दिया, उसे वे बेदाग बनाये रख सकने में सफल हुए, शत प्रतिशत सही है।

कबीरदास जी ने अपने आचरण, अपनी साधना, अपनी भक्ति के माध्यम से सबसे आगे बढ़कर अपनी मनुष्यता से यह सिद्ध कर दिया कि वह ज्ञान के बोझ से दबे हुए एक 'संत' नहीं है, सबसे पहले यह एक 'ईमानदार इंसान' है बाद में और कुछ अपने इसी माननीय गुणों के कारण उन्होंने एक ऐसी मानवीय संस्कृति की परिकल्पना हमारे सामने रखी, जो आज भी हमारे लिए प्रयोजनीय बनी हुई है, किन्तु जिसकी ओर बढ़ता हुआ मनुष्य का एक-एक चरण ऐसी हजार यात्राओं से बढ़कर है, जो कुछ मनुष्यों के द्वारा कोटि-कोटि मनुष्यों को कुचलते हुए अपनी शक्ति तथा वैभव के विस्तार करने के लिए की जाती रही है। एक मानव धर्म, एक मानव समाज तथा एक मानव संस्कृति का सपना आगामी पीढ़ियों के लिए बड़ी मशक्कत के बाद उन्होंने सुलभ की है।

कबीरदास हिन्दी सहित्य के इतिहास में वर्णित भक्तिकाल के 'निर्गुण भक्ति शाखा' के 'ज्ञानाश्रयी काव्य धारा' के अन्तर्गत आते हैं, जिसे 'संत काव्यधारा' के नाम से भी जाना जाता है। पूरे भक्तिकालीन साधकों में कबीरदास का स्थान अन्यतम है। उनके व्यक्तित्व की प्रखरता, चरित्र की निर्मला, स्वभाव की सहजता एवं साधना की उच्चता की सराहना उनके विरोधियों एवं समर्थकों ने समान रूप से की है। कबीर विश्व सन्त है। धरती और इस पर विद्यमान जीवन की खातिर कबीर का जीवन एक लम्बी सत्त प्रार्थना है, कबीर की दृष्टि कई प्रकार से पूर्ण है। मनुष्य को देखते और उसे अपने पूरे होने का अहसास दिलाते हैं। कबीर यों पूरी मनुष्यता के भी और पूरे अस्तित्व के द्रष्टा और प्रतिष्ठापक है। मनुष्यों के प्रति उनके इस प्रकार व्यापक दृष्टिकोण रखने के कारण ही उन्हें मानवतावादी कहा जाता है।

"पूरे सूँ परचा भया, सब दुख मेल्या दूरि।
निर्मल कीन्ही आत्मा, तामैं सदा हजूरि।।"

कबीरदास जी के वाणी में अनुभूति की सच्चाई है, वे पूर्ण सत्य का साक्षात्कार करने वाले अत्यन्त संवेदनशील, सरल हृदय संत थे। उन्होंने जो कुछ कहा है वह सत्य-पूत है। वह भारतीय संस्कृति-सागर के मंथन से प्राप्त दिव्य नवनीत हैं। कबीर अकेले संत कवि हैं, जिन्होंने समस्त धार्मिक आडम्बरों एवं बाह्याचारों को नकार कर सहज-जीवन पद्धति को सर्वोचय मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित किया है। इसीलिए आज यदि शास्त्रनिष्ठु अध्यात्म चिन्तक उनके विचारों में औपनिषदिक चिन्तन की छाया देखता है तो प्रगतिशील, जीवन चेतना से प्रेरित रचनाकार उनमें एक सच्चे विद्रोही की आत्मा के दर्शन करता है, परन्तु कबीरदास जी का रास्ता उल्टा था। मानव जितने भी प्रकार से संस्कारवान बनता है, वे इन सब रास्तों के पथ-प्रदर्शक थे। "वे मुसलमान होकर भी असल में मुसलमान नहीं थे, हिन्दू होकर भी हिन्दू नहीं थे। वे साधु होकर भी साधु (अगृहस्थ) नहीं थें, वे वैष्णव होकर भी वैष्णव नहीं थे, योगी होकर भी योगी नहीं थे, वे कुछ भगवान की ओर से ही सबसे न्यारे बनाकर भेजे गए थे। वे भगवान की नृसिंहावतार मानव प्रतिमूर्ति थे।

कबीरदास जी ने हमेशा ही आम जन को सतर्क रहने की अपील की है, क्योकि उच्च या दबंग किस्म के लोग हमेशा उनके अस्तित्व को मिटाने के प्रयास में रहते हैं। उनका ऐसा ही एक मार्मिक पद है - "हिरना समझि बूझि वन चरना।" इस पद में कबीरदास जी अत्यन्त निरीह, कोमल जीव के बहाने संसार के निरीह लोगों को सचेत, सावधान करते हैं, इस हत्यारी दुनिया से अन्यथा वह इसे मार कर खा जाएगी और उसके चमड़े को अपने सिंहासन पर बिछायेगी अर्थात उनके अस्तित्व के स्थान पर अपने अस्तित्व स्थापित कर लेगी। कबीरदास जी कमज़ोर एवं गरीब मानव की प्रतिष्ठा को स्थापित कर अपने मानवतावादी दृष्टिकोण का परिचय दिया है, जहां एक तरफ उन्होंने 'गो-धन' से लेकर 'रत्न-धन' को बेकार कहा तथा धनिकों के धन को भी व्यर्थ सिद्ध करके

'धूल' के समान बताया है और गरीब को इससे दूर रहकर सन्तोष करने की सलाह देते हैं तथा गरीब लोगों की प्रतिष्ठा स्थापित करते हुए कहते हैं कि -

"प्रभुता से लघुता भली, प्रभुता से प्रभू दूरि।
चींटी लै सक्कर चली हाथी के सिर धूरि।"

यह उक्ति गरीबों में कितना आत्म विश्वास जगाती है और कहती है कि महाजनों को जीवन के सारे वैभव से क्या मिलता है, जबकि लघु जन को जो संतोष मिलता है वह धनवानों को भी दुर्लभ है।

कबीरदास जी ने आम जन को केवल धर्म के पाखंडी ठेकेदारों से ही नही बल्कि कुबेरों और सामंतो के पाखंड से भी बचने की सलाह दिया है। उन्होंने अध्यात्म की वाणी से जगत की बेईमानी का स्पष्ट और आक्रामक चित्र इस पद में खींचा है-

"मन बनिया बनिज न छोड़ै।
जनम-जनम का मारा बनिया, कबहूं पूर न तौले।।"

कबीरदास जी ने मनुष्यता के विरोधी तथा आम जन को दुःख पहुंचाने वाले इन वर्गों की तीखी आलोचना की है। इनकी यह आलोचना द्विअर्थक है- जहां-जहां पाखंड, ठगी, बेईमानी हो वहां-वहां उनकी आंख में उंगली डाल कर प्रत्यक्ष दिखाना और जो-जो उसके शिकार हों उन्हें सचेत करना और सिर्फ उपदेशपरक ढंग से नहीं, एक स्पष्ट सामाजिक चित्र खींचकर। कबीरदास जी ने अपनी रचनाओं के माध्यम से सामाजिक समरसता को स्थापित करने का प्रयास किया। समाज में समरसता स्थापित करने में कबीर की भूमिका को देखते हुए ही नाभादास का कबीर के बारे में यह कहना सटीक लगता है-

"पच्छपात नहिं वचन सबहिं के हित की भाखी।"

कबीरदास जी ने समाज के सभी भेदों को दूर कर एक सुन्दर समाज की स्थापना की बात करते हैं। उनके अनुसार - सर्वसमाज में सद्भाव की स्थापना से ही मानवता की स्थापना हो सकती है। उनका कहना है कि सभी मानव समान है, उन्होंने मानवीय भेद-भावों को मिथ्या माना है, वे कहते हैं कि एक ही ज्योति सबमें व्याप्त है, दूसरा कोई तत्व है ही नहीं।

"एकहि जोति सकल घट व्यापक दूजा तत्त न कोई।
कहै कबीर सुनौ रे संतौ, संतौ भटकि मरै जनि कोई।।"

कबीरदास जी मन के आन्तरिक शुद्धता पर बल देते हैं न कि बाह्य पवित्रता पर। पचित्रता - अपवित्रता पर विचार करते हुए वे कहते हैं कि पंडित तुम कहते हो कि पवित्र स्थान पर भोजन करना चाहिए, बताओ कि कौन सा स्थान पवित्र है? विचार करने पर माता-पिता भी जूठे है और वृक्षों में लगने वाले सारे फल जूठे है। अग्नि और

जल भी जूठे हैं। गोबर और चौका भी जूठा है। वस्तुतः पवित्र और शुद्ध तो व ही लोग हैं, जिन्होंने हरि की भक्ति करके अपने मन के विचारों को दूर कर लिया है।

"कहु पंडित सूचा कवन ठाउ।
जहां वैसि हउं भोजन खाऊ।।
माता जूठा पिता भी जूठा जूठे ही फल लागे।
आवहिं जूठे जाहिं भी जूठे जूठैं मरहिं अभागे।।
अगिनि भी जूठी पानी जूठा जूठै वैसि पकाया।
जूठि करछी अन्य परोसा जूठै जूठा खाया।।
गोबरू जूठा चउका जूठा जूठै दीनी कारा।
कहै कबीर तेई जन सूजे हरि भजि तजहिं विकारा।"

कबीरदास जी ने मानवता के प्रबल विरोधी पक्ष, आर्थिक भेदभाव पर भी ध्यान केन्द्रित किया है, उन्होंने कहा है कि जो निर्धन है, उनका आदर कोई नहीं करता, जब निर्धन धनी के यहां जाता है तो वह मुंह फेर लेता है, किन्तु जब धनी निर्धन के यहां आता है तो वह उसका आदर करता है। वस्तुतः धनी एवं निर्धन दोनो भाई-भाई है, यह तो प्रभु की कला है कि दोनों दो स्थितियों में पड़ गए हैं। वास्तविक निर्धन तो वह है जिसके हृदय में भगवान का नाम नहीं है।

"निर्धन आदर कोई न टेई। लाख जतन करै ओहू चित न धरेई।
जो निरधन सरधन कै जाई। आगे बैठा पीठ फिराई।
जौ सरधन दोनो भाई। दीया आदर लिया बुलाई।
निर्धन सरधन दोनों भाई। प्रभु की कला न मेटी जाई।
कहि कबीर निर्धन है सोई। जाकै हिरदै नाम न होई।।"

यद्यपि उक्त पद में कबीरदास जी ने गरीब-अमीर में सामंजस्य बैठाते हुए गरीब-अमीर दोनो को भाई-भाई कहा है, परन्तु कबीर ने जितना आक्रोश सामाजिक और धार्मिक असमानता के प्रति है, उसका शतांश भी आर्थिक विषमता के प्रति नहीं है। इसलिए उन्होंने उनके विचारों और बाह्याचारों तथा सारे कर्मकांडो पर कड़ी चोट किये जो साधारण जन को अपमानित करने वाले तथा आदमी और आदमी में फर्क करके देखने वाले थे। उन्होंने मानवता विरोधी सतही विधि-विधानों, खोखली पूजा-चर्या, सड़े-गले रीति-रिवाजों को बढ़ावा देने वालों को तिलमिला देने वाले सवालों की झड़ी लगाते हुए निरूत्तर किया।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में ‘‘कबीर ने मनुष्यत्व की सामान्य भावना को आगे कर निम्न श्रेणी के जनता के मन में आत्मगौरव का भाव जगाया।’’ कबीरदास जी ने मनुष्यता के विकास की जो भी बातें कहीं उसे उन्हें बहुत ही साहस एवं जीवटता के साथ कहना पड़ा होगा। हम आज एक मानव धर्म और एक मानव संस्कृति की बात करते हैं किन्तु हममें से कितने लोग हे जो कबीर जैसा तेवर रखते हैं। कबीर यह सब लगभग पांच सौ साल पहले कह सके और कह ही नहीं सके अपने आचरण में उसे उतार भी सके थे। उनके पास इतना आत्मविश्वास था कि वे साहस के साथ यह भी कह सके कि उनका रास्ता ही एक मात्र रास्ता है और बाकी के सारे रास्ते गुमराह करने वाले हैं। उनका यह कथन कि जिस चादर को बड़े बड़े सुर, नर और मुनियों ने ओढ़ कर मैला कर दिया, उसे वे बेदाग बनाये रख सकने में सफल हुए, शत प्रतिशत सही है।

कबीरदास जी ने अपने आचरण, अपनी साधना, अपनी भक्ति के माध्यम से सबसे आगे बढ़कर अपनी मनुष्यता से यह सिद्ध कर दिया कि वह ज्ञान के बोझ से दबे हुए एक ‘संत’ नहीं है, सबसे पहले यह एक ‘ईमानदार इंसान’ है बाद में और कुछ अपने इसी माननीय गुणों के कारण उन्होंने एक ऐसी मानवीय संस्कृति की परिकल्पना हमारे सामने रखी, जो आज भी हमारे लिए प्रयोजनीय बनी हुई है, किन्तु जिसकी ओर बढ़ता हुआ मनुष्य का एक-एक चरण ऐसी हजार यात्राओं से बढ़कर है, जो कुछ मनुष्यों के द्वारा कोटि-कोटि मनुष्यों को कुचलते हुए अपनी शक्ति तथा वैभव के विस्तार करने के लिए की जाती रही है। एक मानव धर्म, एक मानव समाज तथा एक मानव संस्कृति का सपना आगामी पीढ़ियों के लिए बड़ी मशक्कत के बाद उन्होंने सुलभ की है।

अव्यवस्था पर ऊंगली उठाने वाले अमानवीयता को बेनकाब तथा अपने समय में अस्वीकार का सबसे बड़ा साहस रखने के कारण ही कबीर हमारे कबीर, समकालीन कबीर, हमारे आज और हमारे कल के भी कबीर हैं, हमारे हमसफर, नई सदी के मार्गदर्शक, आग के शोले की तरह जलते-धधकते, दहकते कबीर, जिनकी आंच को व्यवस्था न उनके समय में सह पाई थी और न आज ही सह पारही है। कबीरदास जी जहां एक तरफ आक्रामक, अक्खड़, विद्रोही और हर तरह के समझौते को लानत देने वाले हैं वहीं दूसरी ओर उतने ही आर्द्र, विनम्र, मृदु, शांत और मानवीय करूणा से ओत-प्रेत, सामाजिक अन्याय को देखकर रात-रात भर जागकर रोने वाले, दीन निरीह और विनयी है। कबीर की वाणियों में जो सेवा, पर-उपकार, पर-दुःखकातरता, सदाचार, सच्चाई, निर्मल अंतःकरण मेहनत की कमाई तथा ईमानदारी के साथ जीने का जो सन्देश मिलता है वह अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। वास्तव में कबीरदास जी ने एक ऐसे मानव धर्म की परिकल्पना की है, जिसमें मनुष्य सत्य से बढ़कर और कोई न हो, न कोई हिन्दू और न मुसलमान हो, बस इंसान के रूप में जाने और पहचाने जायें, जैसा कि कबीर खुद थे। वे वर्तमान सामाजिक संरचना और उसे बहुसंख्यक मनुष्यता की नियति के रूप में बनाये और

बचाये रखने वाले धर्म और धर्मशास्त्रों की अमानवीयता, उसकी भेद-भाव पूर्ण दृष्टि और उससे जुड़े सारे विधिक निषेधों नियमों और अनुशासनों के प्रति सदैव बागी के रूप में हमारे सामने आते हैं। इन सबको हर स्तर पर उनकी बुनियाद में ही वे अस्वीकार कर देते हैं। जो सामाजिक संरचना जन्म के साथ ही आदमी की अपनी अलग-अलग हैसियत तय कर देती हो, अधिकार और कर्तव्यों के हर स्तर पर आदमी-आदमी में फर्क करती हो, अमनुष्यता के एक बड़े तबके को अस्पृश्य मानते हुए उसे जानवर से भी बदतर ज़िन्दगी देती हो, कबीर ऐसी सामाजिक संरचना और उसके प्रेरक धर्म और धर्मशास्त्रों को न केवल नकारते हैं, उनके खामियों पर व्यंग्य के ब्रम्हास्त्र भी चलाते हैं, उन्हें अमानवीयता हैं, उनके खामियों पर व्यंग्य के ब्रम्हास्त्र भी चलाते हैं, उन्हें अमानवीयत के नाते जलील भी करते हैं, उनका माखौल उड़ाते हैं, उन्हें भू-लुंठित करते हैं। इनकी व्यंग्य की बुनियाद में गहरी मानवीय करूणा, बीज-भाव के रूप में विद्यमान रहती है, कबीर के इस आक्रामक स्वभाव और गैर-समझौतावादी अक्खड़ता के सात पर्तों के नीचे भी मानवीय करूणा का एक विराट स्रोत विद्यमान है। यातनाग्रस्त मनुष्य की पीड़ा के प्रति जितनी करूणा उनके मन में है, आततायी व्यवस्था और उसके हामियों के प्रति उनका क्रोध भी उतना ही प्रबल है। उनका आक्रामक और विद्रोही तेवर उनकी मानवीय करूणा का ही प्रसंग के अनुरूप प्रतिफलन है।

संन्दर्भ

1. सम्पादक डॉ. बलदेव बंशी,पूरा कबीर पेज-217
2. डॉ. तिवारी, कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ-61
3. आचार्य रामचनद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ-46
4. रामचन्द्र तिवारी, कबीर मीमांसा, पृष्ठ 120-121

डॉ. निर्भय सिंह

डॉक्टरेट-हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़

email- nirbhaysinghdr@gmail.com

mobile: 7078889333